राहुल को झटका देकर केसीआर के साथ जाएंगे मायावती और अखिलेश

मौजूदा दौर में भले ही लोकसभा और विधान सभा में बसपा-सपा के सांसदों-विधायकों की संख्या भाजपा से काफी कम हो, लेकिन इससे सपा-बसपा की ताकत को कम करके नहीं आंका जा सकता है।

उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी (बसपा) और समाजवादी पार्टी (सपा) की अपनी हनक और धमक है। मौजूदा दौर में भले ही लोकसभा और विधान सभा में बसपा-सपा के सांसदों-विधायकों की संख्या भाजपा से काफी कम हो, लेकिन इससे सपा-बसपा की ताकत को कम करके नहीं आंका जा सकता है। पिछले करीब करीब दो दशकों से उत्तर प्रदेश की सियासत की धुरी इन दोनों दलों के इर्दगिर्द ही नाचती रही है। कई मौकों पर तो राष्ट्रीय पार्टी कहने वाली कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी ने इन दलों का पिछलू बनने से भी गुरेज नहीं किया। उत्तर प्रदेश ही नहीं, केन्द्र की सियासत तक में इन दोनों दलों की जबर्दस्त चलती थी। यूपीए की मनमोहन सरकार लगातार दस वर्षों तक इनकी 'बैसाखी' पर टिकी रही। केन्द्र की सियासत में मोदी के पदार्पण के बाद इन दोनों दलों को बहुत सियासी नुकसान उठाना पड़ा। यह बात किसी से छिपी नहीं है, लेकिन सपा-बसपा ने हार नहीं मानी तो समय की नजाकत को भी समझा। समाजवादी पार्टी से मुलायम की विदाई और अखिलेश यादव के उभार ने वर्षों से चली आ रही सपा-बसपा की दुश्मनी को विराम लगा दिया। अखिलेश ने बससा सुप्रीमो मायावती को बुआ की उपाधि दी तो मायावती ने भतीजे अखिलेश को थोड़ी-नानुकुर के बाद 'गले' लगा लिया।

दुश्मनी, जब दोस्ती में बदली तो इसका नतीजा उत्साहवर्धक रहा और यूपी के कैराना, गोरखपुर और इलाहाबाद (अब प्रयागराज) सीट पर हुए उप-लोकसभा चुनाव में तीनों सीटों पर समाजवादी पार्टी का कब्जा हो गया। यह जीत इसलिये भी महत्वपूर्ण थी, क्योंकि गोरखपुर की लोकसभा सीट योगी आदित्यनाथ के मुख्यमंत्री बनने के बाद और प्रयागराज की सीट केशव प्रसाद मौर्या के उप-मुख्यमंत्री बनने के बाद रिक्त हुई थी। हालांकि कांग्रेस ने भी उप-चुनाव में अपना प्रत्याशी नहीं उतारा था, लेकिन इसको ज्यादा तवज्जो नहीं मिली। ऐसा इसलिए था क्योंकि उत्तर प्रदेश में कांग्रेस की सियासी जमीन पूरी तरह से %बंजर% है। आज भी कांग्रेस रायबरेली और अमेठी तक सिमटी हुई है।

उत्तर प्रदेश में सपा-बसपा की जुगलबंदी ने भारतीय जनता पार्टी की मुश्किलें बढ़ा दी हैं। इन दोनों के एक होने के बाद यहां तक चर्चा शुरू हो गई है कि सपा-बसपा मिलकर दिल्ली में मोदी के विजय रथ को रोक सकते हैं और इसमें कांग्रेस भी शामिल हो जाये तो 'सोने पर सुहागा' हो जायेगा। पहले ऐसा लग भी रहा था कि उत्तर प्रदेश में लोकसभा की 80 सीटों पर कांग्रेस-बसपा और सपा महागठबंधन बनाकर मोदी को चुनौती देंगे, लेकिन जैसे ही कांग्रेस की तरफ से 'फुलझड़ी' छोड़ी गई कि राहुल गांधी प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार होंगे, बसपा सुप्रीमो मायावती ने कांग्रेस से दूरी बनाना शुरू कर दी। ऐसा इसलिये था क्योंकि मायावती भी प्रधानमंत्री की रेस से अपने आप को बाहर नहीं करना चाहती थीं। मायावती ने तेवर दिखाए तो अखिलेश भी उनके सुर में सुर मिलाने लगे। कांग्रेस को लेकर सपा-बसपा की तल्खी तब और तीव्र हो गई जब मध्य प्रदेश में सपा-बसपा के विधायकों को सरकार गठन में कोई तरजीह नहीं दी गई, जबकि दोनों ही दलों के विधायक मंत्री बनने का सपना पाले हुए थे। मध्य प्रदेश में जो हुआ उसके बाद अखिलेश यादव ने गत दिनों लखनऊ में कहा, 'कांग्रेस को धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने हमारे जीते विधायकों को मध्य प्रदेश में मंत्री नहीं बनाया। उन्होंने हमारा रास्ता साथ कर दिया है। यूपी में गैर-कांग्रेसी गठबंधन बनेगा।' अखिलेश फेडरल फ्रंट नाम के तीसरे मोर्चे की वकालत भी करने लगे हैं। वह तीसरा मोर्चा बनाने की कोशिश में लगे तेलंगाना के सीएम की तारीफ भी कर रहे हैं और हैदराबाद जाकर केसीआर से मुकालात करने की बात भी कह रहे हैं।

दरअसल, आजकल सपा प्रमुख अखिलेश यादव, बसपा की बी टीम जैसा व्यवहार कर रहे हैं। वह किसी भी सूरत में बुआ मायावती का साथ नहीं छोड़ना चाहते हैं और मायावती पीएम बनने की इच्छा अपने मन में पाले हुए हैं। मायावती के प्रधानमंत्री बनने का सपना तभी संभव हो सकता है, जब बीजेपी यानी मोदी ही नहीं कांग्रेस मतलब राहुल गांधी की भी ताकत घटे। ऐसे में तेलंगाना के मुख्यमंत्री के. चंद्रशेखर राव (केसीआर) बहनजी के लिये एक 'फरिश्ता' साबित हो सकते हैं, जो पड़ोसी राज्य आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री चन्द्रबाबू नायडू की सोच और सियासत से अलग सोच लेकर आगे बढ़ रहे हैं। नायडू जहां कांग्रेस को साथ लेकर मोदी का वर्चस्व तोड़ना चाहते हैं, वहीं केसीआर गैर भाजपा ही नहीं गैर कांग्रेस तीसरा मोर्चा बनाने की कोशिशों को परवान देने में लगे हैं। केसीआर अलग-अलग राज्यों के क्षेत्रीय दलों के आकाओं को गैर-बीजेपी, गैर-कांग्रेस गठबंधन के लिए राजी करने में जुट गए हैं। उनकी कोशिश लोकसभा चुनाव के लिए एक ऐसा गठबंधन तैयार करने की है, जिसके जरिए सरकार गठन का रिमोट उनके हाथ हो। इस गणित में प्रधानमंत्री का चेहरा बाद में तय होगा, लेकिन इतना तय है कि वह क्षेत्रीय दलों के बीच से ही होगा। केसीआर ने तीसरा मोर्चा खड़ा करने की कोशिश शुरू करने के साथ ही इस बात का भी ऐलान कर दिया कि वह स्वयं प्रधानमंत्री की रेस में शामिल नहीं हैं, ताकि कोई गलतफहमी नहीं रहे।

केसीआर तीसरा मोर्चा खड़ा करने के लिये मुख्य रूप से उन आधा दर्जन राज्यों पर फोकस कर रहे हैं, जहां क्षेत्रीय दल होने के बाद भी यह दल कहीं भाजपा तो कहीं कांग्रेस के खिलाफ मुख्य मुकाबले में हैं और आम चुनाव में भाजपा-कांग्रेस से बराबर दूरी बनाए रखना चाहते हैं। इन राज्यों में सबसे ज्यादा 80 लोकसभा सीटों वाला उत्तर प्रदेश भी शामिल है। केसीआर जानते हैं कि अखिलेश और मायावती, दोनों ही अभी तक कांग्रेस के साथ जाते नहीं दिख रहे हैं। वहीं बात बंगाल की कि जाए तो 42 लोकसभा सीटों वाले पश्चिम बंगाल में मुख्य दल तृणमूल कांग्रेस है जो ममता बनर्जी के नेतृत्व में वहां सत्तारूढ़ भी है।

खैर, केसीआर तीसरा मोर्चा खड़ा करने के लिये मुख्य रूप से उन आधा दर्जन राज्यों पर फोकस कर रहे हैं, जहां क्षेत्रीय दल होने के बाद भी यह दल कहीं भाजपा तो कहीं कांग्रेस के खिलाफ मुख्य मुकाबले में हैं और आम चुनाव में भाजपा-कांग्रेस से बराबर दूरी बनाए रखना चाहते हैं। इन राज्यों में सबसे ज्यादा 80 लोकसभा सीटों वाला उत्तर प्रदेश भी शामिल है। केसीआर जानते हैं कि अखिलेश और मायावती, दोनों ही अभी तक कांग्रेस के साथ जाते नहीं दिख रहे हैं। वहीं बात बंगाल की कि जाए तो 42 लोकसभा सीटों वाले पश्चिम बंगाल में मुख्य दल तृणमूल कांग्रेस है जो ममता बनर्जी के नेतृत्व में वहां सत्तारूढ़ भी है। ममता भी मायावती-अखिलेश की तरह भाजपा एवं कांग्रेस के साथ बराबर की दूरी बनाकर चल रही हैं।

उड़ीसा में बीजू जनता दल सत्तारूढ़ है। 21 सीटों वाले इस राज्य में बीजू जनता दल के मुखिया और मुख्यमंत्री नवीन पटनायक भी कांग्रेस और बीजेपी दोनों से अलग राह पकड़े हुए हैं। केरल जहां लोकसभा की 20 सीटें हैं, वहां लेफ्ट फ्रंट हमेशा ही कांग्रेस और बीजेपी से बराबर की दूरी बनाकर चलता रहा है। 17 सीटों वाले तेलंगाना में खुद केसीआर की पार्टी टीआरएस सत्ता में है इसके अलावा यहां असदुद्दीन ओवैसी की पार्टी भी है, और यह दोनों बीजेपी-कांग्रेस से बराबर की दूरी बनाए हुए हैं। 14 सीटों वाले असम में एआईयूडीएफ मजबूत ताकत है। 2014 के लोकसभा चुनाव में इसने कांग्रेस के बराबर ही तीन लोकसभा सीट जीती थी। एआईयूडीएफ भी कांग्रेस और बीजेपी से बराबर दूरी बना कर चलने वाला फ्रंट है।

इस तरह इन छह राज्यों से ही करीब 200 सीटें हो जाती हैं, जहां सीधे तौर पर कांग्रेस और भाजपा से दूरी रखने वाले दलों का आधिपत्य है। इसके अलावा जम्मू-कश्मीर में नेशनल कॉन्फ्रेंस और पीडीपी के बीच यह तय नहीं है कि कांग्रेस के साथ कौन जाएगा। दोनों का कांग्रेस के साथ जाना मुश्किल माना जा रहा है। ऐसे में कांग्रेस के साथ न जाने वाला कोई एक तीसरे मोर्चा के साथ भी आ सकता है। दिल्ली में आम आदमी पार्टी से भी केसीआर की उम्मीदों को उड़ान मिल रही हैं। तमिलनाडु में भी कांग्रेस और बीजेपी के साथ न जाने वाले दल केसीआर के पाले में आ सकते हैं। केसीआर को लगता है कि जब मैदान इतना खुला है तब बीजेपी को रोकने के नाम पर ऐसे किसी महागठबंधन का हिस्सा क्यों बना जाए जहां राहुल गांधी को पीएम बनाने का सपना पहले से ही कुछ लोगों ने पाल रखा है। वैसे, इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता है केसीआर की राह आसान नहीं है क्योंकि उनकी कोशिशों के पंख काटने के लिये भी कुछ सियासी शक्तियां मैदान में आ गई हैं। इसीलिये केसीआर के मोदी के प्रति झुकाव के पूर्व के रिकार्ड के आधार पर कांग्रेस बताने भी लगी है कि केसीआर का मकसद तीसरा मोर्चा बनाना नहीं मोदी को फायदा पहुंचाना है।

बहरहाल, बात कांग्रेस की कि जाये तो हाल ही में तीन राज्यों में सत्ता मिलने के बाद सार्वजनिक मंचों पर कांग्रेस का उत्साह भले ही उफान पर दिखता हो, लेकिन वह इस सच्चाई को भी जानती हैं कि आम चुनाव में कांग्रेस के लिये यहां राह बहुत आसान नहीं होने वाली है। वैसे छत्तीसगढ़ को छोड़ दें तो मध्य प्रदेश और राजस्थान में बीजेपी, कांग्रेस के बीच का वोट प्रतिशत तो यही कहता है। मध्य प्रदेश में बीजेपी की सत्ता जरूर चली गई, लेकिन वोट प्रतिशत के मामले में उसकी स्थिति कांग्रेस से बेहतर रही। अगर बीजेपी से नाराज वोटर नोटा में वोटा न करते तो यहां की तस्वीर बदल सकती थी। इसी प्रकार राजस्थान में भी कांग्रेस और बीजेपी के बीच मात्र प्वांइट 05 प्रतिशत का अंतर रहा और उसके नेतृत्व में महागठबंधन की बात हो रही हो, लेकिन एक सच्चाई यह भी है कि बड़े राज्यों में- मध्य प्रदेश (29 सीट), गुजरात (26 सीट), राजस्थान (25 सीट), छत्तीसगढ़ (11 सीट), पंजाब (13 सीट) ही ऐसे हैं, जहां एनडीए के मुकाबले कांग्रेस अकेली ताकत है। इनका योग महज 103 सीट ही आता है। अन्य छोटे-छोटे राज्यों को अगर इसमें शामिल कर लिया जाए तो भी यह आंकड़ा 115 तक ही पहुंचता है। बाकी राज्यों में या तो क्षेत्रीय दलों का बराबर का दबदबा है या कांग्रेस की निर्भरता अपने किसी क्षेत्रीय सहयोगी दल के साथ है। इस वजह से कांग्रेस के लिए क्षेत्रीय दलों को साथ लेना बेहद अहम है। कांग्रेस के लिए फिलहाल वह स्थिति नहीं बन पाई है कि वह केंद्र में अकेले सरकार बनाने की बात सोच सके।

केसीआर को लगता है कि अगर कांग्रेस के मुकाबले क्षेत्रीय दलों के गठबंधन के हिस्से में ज्यादा सीटें आ जाती हैं तो कांग्रेस की मजबूरी क्षेत्रीय दलों के गठबंधन को समर्थन देने की हो जाएगी। यूपी से मायावती और बंगाल से ममता- दो ऐसे चेहरे हैं, जो कि खुद को प्रधानमंत्री की रेस में बराबर बनाए रखना चाहते हैं। क्षेत्रीय दल कांग्रेस को इसलिए भी मजबूत होते नहीं देखना चाहते क्योंकि उससे राज्यों में उनकी राजनीतिक जमीन खिसकने का खतरा खड़ा हो जाएगा। ज्यादातर राज्यों में क्षेत्रीय दलों का उदय और उन्हें हासिल जनाधार कांग्रेस के कमजोर होने की वजह से मिला है। कांग्रेस के मजबूत होते ही राज्यों के राजनीतिक समीकरण भी बिगड़ सकते हैं, इस वजह से ज्यादातर क्षेत्रीय दलों की दिलचस्पी कांग्रेस को कमजोर बनाए रखने में ही है।